जैनसुधाबिन्दु ॥

पूर्वार्द्ध भाग ॥

जिसमे स्वामीदयानन्द सरस्वती कृत प्रथमावृत्ति सत्यार्थ
प्रकाशान्तरस्थ द्वादश समुल्लास का यथार्थ रूप
खण्डन किया गया है ॥

जिसको

श्री परमपूज्य जक्त विख्यात अनेक महत पदालंकृत चौधरी
माणिकचन्द्र जी तत्पुत्र चौधरी सुमेरुचन्द जी तत्रात्मज
परम विद्वान ज्योतिष रत्नदिवाकर जैनधर्म्मानुरागी
सच विप्र श्रीयुत पण्डित जीयालाल जी चौधरी
रईस फ़र्रुख़नगर ज़िला गुरगांव ने लिखा ॥

और

फर्रुखनगर निज विनोद पुस्तकालय के मैनेजर साहिब ने
हनुमत्प्रास कालाकांकर मे कृपा कर प्रकाशित किया ॥

मूल्य ≈)

प्रथम बार १०००

(धन्यवाद)

हम इस गुण ग्राहकता का कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि इस पुस्तक के छपाने में हमको श्रीमान् लाला मामूमल साहिब कसेरह स्थान खरड़ ज़िला अम्बाला निवासी ने द्रव्य द्वारा सहायता दी ॥

धन्यवाददाता
ज्योतिषरत्न जीयालाल
फर्रुखनगर

ईश्वर कोइ नहीं है किन्तु तपोबल से जीव ईश्वर रूप हो जाता है जगत् का करता कोई नहीं जक्त अनादि है जैसे घास वृक्ष पाषाणादिक पर्वत वनादिकों में आपसे आपही होजाते हैं ऐसे पृथिव्यादिक भूत भी आपसे आप बन जाते हैं, परमाणु का नाम पुद्गल रक्खा है जो पृथिव्यादिकों को पुद्गल मानते हैं, जब प्रलय होता है तब पुद्गल जुदे जुदे होजाते * और जब वे मिलते हैं

---

* जितने लेख के नीचे लकीर खेंची गई है उसकी पुष्टी के लिये स्वामी जी अपने ४ नवम्बर सन् १८८० ई॰ के पत्र में आत्मा राम जीको लिखते हैं कि "मैंने ठाकुरदास जीके जवाब में एक पत्र आर्य्यसमाज गुजरान वाला की मारफ़त भेजा था जो आप के पास भी पहुंचा होगा उसमें यह जतलाया गया है कि जैन बौद्ध दोनों एकही हैं, और इसमें स्वामी जी पुस्तक "इकसार,, पृष्ट ६५ पं॰ १३ तथा पृष्ट ११३ पं॰ ७ पृष्ट १२७ पं॰ ८ पृष्ट१३८ पृष्ट १५२ पं॰ १४ का प्रमाण देकर लिखते हैं कि इस तरह आपके ग्रन्थों में कथा साफ़ साफ़ मौजूद हैं जिसको कोई श्रावक वखि-लाफ़ न कर सकेगी, और ठाकुरदास की पहिली चिट्ठी में आप लोग कई श्लोक मंजूर कर चुके हैं, तत्पश्चात् स्वामी जी राजा शिवप्रसादरईस बनारस कृत इतिहास तिमिरनाशिक की भूमिका से जैन बौद्ध को एक बतलाते हैं सो प्रथम तो "इकसार,, ग्रन्थ जैनियों का कोई सूत्र सिद्धान्त नहीं है दूसरे उसका यथार्थ आशय स्वामी जी को समझ में भी नहीं आया और जो वाक्य स्वामी जीने ठाकुरदास के विषय लिखे उसके उत्तर में ठाकुरदास अपनी २२ नवम्बर सन् १८८० ई॰ की चिट्ठी में लिखते हैं कि "भला स्वामी जी मैंने किस पत्र में स्वीकार लिया है ऐसा झूठ बोलना छल करना आपको किसने सिखलाया आप इसी प्रकार धोखेबाज़ी करते हैं,,. और राजा शिवप्रसाद जी का पत्र जो 'दयानन्द छल कपट दर्पण' प्रथम भाग में छपा है उससे स्पष्ट स्वामी जी का यह कहना मिथ्या सिद्ध होता है कि जैन बौद्ध एकही हैं।

तब पृथिव्यादिक स्थूल भूत बन जाते हैं और जीव कर्म योग से अपना २ शरीर धारण कर लेते हैं जैसा जो कर्म करता है उस को वैसा फल मिलता है आकाश में चौदह राज्य मानते हैं उसके ऊपर जो पद्म शिला उसको मोक्ष स्थान मानते हैं जब शुभ कर्म जीव करता है तब उनके कर्मों के वेग से चौदह राज्यों को उल्लंघन करके पद्म शिला के ऊपर विराजमान होते हैं चराचर को अपनी ज्ञान दृष्टि से देखते हैं फिर संसार दुःख जन्म मरण में नहीं आते वहीं आनन्द करते हैं ऐसी मुक्ति जैन लोग मानते हैं॥

(स) यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा सत्य है कि जैनी लोग अहिंसा को परम धर्म मानते हैं, एक बिन्दु जल में असंख्याते जीव कहते हैं जल को बहुत छान कर पीते हैं और सब पदार्थों को शुद्ध रखते हैं, जगत् का करता किसी को नहीं मानते और कर्मानुसार शरीर पाते हैं जैसा जो कर्म करता उसको वैसा फल मिलता है पद्मशिला (मोक्ष) में गया जीव ज्ञान दृष्टि से चराचर को देखता है, और फिर संसार दुःख जन्म मरण में नहीं आता वहीं आनन्द करता है॥

पाठक वृन्द ध्यान लगा कर सुनो कि अहिंसा की जननी दया है, और दया का भंडार धर्म्म है इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां दया तहां धर्म, और इसको तो सर्व साधारण स्वतः प्रमाण करते हैं॥

दोहा॥

दया धर्म्म को मूल है पाप मूल अभिमान।
मन से दया न त्यागिये जब लग घट में प्रान॥ १॥

रहा एक बिन्दु जल में असंख्याते जीवों का होना सो इसका यथार्थ भेद ज्ञान गम्य है, जब तक पक्षपात रूपी चश्मा आंखों से हटा कर किसी पूरे गुरु का सत्सङ्ग न किया जायगा यथार्थ भेद पाना कठिन है, जैसे एक बीज में अपने सदृश अनन्त बीज उत्पन्न करने की सत्ता है उसको प्रत्येक नहीं समझता सर्वसाधारण पर

प्रकट है इसी प्रकार एक जल बिन्दु में रहे असंख्य जीव सत्य सिद्धान्त के जानने वाले उत्तम गुरु के उपदेश बिना समझ में नहीं आसकते, और बिना समझे इस पर तर्क करना ऐसा है. जैसे मूर्ख मनुष्य चन्द्रमा को थाली समझ उसके लेने का यत्न करे और न मिलने पर दुखी होता है, जल छान कर काम में लाना यह अति उत्तम कर्म्म है, जिसको सब कोई मानता है किन्तु आपने भी मनु का यह वचन कि "वस्त्रपूतंजलंपिवेत„ नवीन सत्यार्थ प्रकाश„ पृष्ट ३४ पंक्ति २० में ग्रहण किया है, तथा पदार्थों का शुद्ध रखना मनुष्य मात्र का धर्म्म है जो मनुष्य भी पशुओं के सदृश भक्षाभक्ष का ध्यान न करें तो उनमें और पशुओं मे अन्तर ही क्या रहे ॥ उक्तंच॥ आहारनिद्राभयमैथुनंच। समान मेतत्पशुभिर्नराणाम ज्ञानोहितेषामधिकोविशेषो। ज्ञानेनहीनाः पशुभिस्समाना ॥ १ ॥

ईश्वर जगत कर्त्ता होने के विषय जैन के शास्त्रों में असंख्य लेख [illegible] विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि [illegible] इच्छा बिना किसी भी कार्य्य का आरम्भ नहीं होसकता [illegible] इच्छा [illegible] होगी वहां सर्व शक्तिमान आदि सद्गुणों [illegible] सिद्ध [illegible] ईश्वर की ईश्वरता का अभाव होजायगा और [illegible] का कथन है कि जगत मिथ्या भ्रम मात्र ही [illegible] मिथ्या है उसका करता परम पवित्र सत्य [illegible] परमात्मा क्योंकर सम्भवे, इसलिये किसी कर्त्ता व्यक्त का न होना अनेक प्रमाणों से सिद्ध और युक्त २ है, परन्तु यह लिखना [illegible] सर्वथा झूठ है कि जैनी लोग ईश्वर को नहीं मानते, जैन शास्त्रों में तो ईश्वर के गुण लक्षण जैसे चाहियें वैसे पृथक् शास्त्र में विस्तार सहित वर्णन किये हैं, और जो जैसा कर्म्म करता है उसको वैसा फल मिले यह तो सर्व साधारण का कथन है, किन्तु निज पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश„ में स्वामी जी भी अनेक स्थान पर कर्म्मानुसार फलाफल मानते हैं, और मोक्ष में गये जीव का पुनः लौट आना केवल स्वामी जी के व्यतिरिक्त और

किसी भी विद्वान ने नहीं माना. इससे स्वामी जी का तर्क व्यर्थ है जो मोक्ष में जाकर भी जीव लौट आया तो मोक्ष क्या हुई स्त्री का पीहर होगया जब मन चाहा चली गई पति याद आया सासरे लौट आई। और स्वामी जी उस मुख वस्त्रिका पर तर्क करते हैं जो ढूंढ़िये लोग मुख पर रखते हैं, इससे स्वामीजी का व्यर्थ द्वेष सिद्ध होता है. क्योंकि व्यर्थ रज जन्तु आदि के बचाव के लिये ऐसा करने में कुछ हानि नहीं क्या जब वर्षा ऋतु में मच्छरादि अनेक सूक्ष्म जीवों की अधिकता होती है तो सर्व साधारण जन उनको मुख चक्षु नासिकादि से बचाने के लिये वस्त्रादिक की सहायता नहीं लेते ? और बिना सहायता लिये विवेकी जन नहीं रहते विद्वान् पुरुष अपरचित मार्ग में पांव नहीं उठाते. स्वामी जी शुद्ध सनातन परम पवित्र जैन धर्म्म का भेद जाने बिनाही व्यर्थ गाल बजाते हैं यह नहीं समझते कि जैनी लोग प्रलय किसको कहते हैं, पुद्गल किसको मानते हैं, और राज्य क्या वस्तु है ? बिना समझे मनमाना लिख मारा. क्योंकि चौदह राज्य नहीं किन्तु राजू हैं, और राजू नाम एक माप वा के पैमाने का है, किसी राजधानी वा लोक का नहीं है. और उसमें भी आकाश पाताल सब मिला कर यह गणना है. केवल आकाश पर चौदह राजू मानना यह स्वामी जी का भ्रम है बिना किसी जैन शास्त्र के देखे पढ़े जो कुछ झूट सच सुना सुनाया वही लिख मारा यह न समझे कि विद्वान् पुरुष इसको देख कर क्या कहेंगे ॥

पुनः पृष्ठ ३८६ पंक्ति अन्तिम से लेकर पृष्ठ ३८७ पंक्ति १ तक लिखा है ॥

(द) और जैनी ऐसा भी कहते हैं कि धर्म्म जो है सो जैन का ही है और सब हिंसक हैं, तथा अधर्मी क्योंकि जो हिंसा करते हैं वे धर्मात्मा नहीं ॥

(ध) यहां विशेष लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं जब पक्षपात छोड़ कर सत्यासत्य का निर्णय किया जाय तो स्वतः सिद्ध हो

सकता है कि सनातन और सच्चा धर्म्म क्या है ? ॥

पुनः पृष्ट ३९७ पंक्ति २ से पृष्ट ३९८ पंक्ति २ तक स्वामी जी लिखते हैं ॥

(इ) जो यज्ञ में पशु मारते हैं और ऐसी २ बातें कहते हैं कि यज्ञ में जो पशु मारा जाता है सो स्वर्ग में जाता होय तो अपना गुरु वा पिता को न मार डालें स्वर्ग को जाने के वास्ते ऐसे २ श्लोक उनने बना रक्खे हैं "त्रयोवेदस्यकर्तारोधूर्तभांडनिशाचराः.," इसका यह अभिप्राय है कि ईश्वर विषय की जितनी बात वेद से हैं वे धूर्त की बनाई हैं जितनी फल स्तुति अर्थात् इस यज्ञ को करैं तो स्वर्ग में जाय यह बात भांडों ने बना रक्खी हैं, और जितना मांस भक्षण पशु मारने की विधि है वेद में सो राक्षसों ने बना लिया है. क्योंकि मांस भोजन राक्षसों को बड़ा प्रिय है सब बात अपने खाने पीने और जीविका के वास्ते लोगों ने बनाई हैं, और जैन मत है सो सनातन है और यही धर्म्म है इसके बिना किसी को शुभ गति वा सुख कभी नहीं होसकता ऐसे २ वे बातें कहते हैं। इनसे पूछना चाहिये कि हिंसा तुम लोग किसको कहते हो ? जो वे कहें कि किसी जीव को पीड़ा देना सो तो बिना पीड़ा के किसी प्राणी का कुछ व्यवहार सिद्ध नहीं होता क्योंकि आप लोगों के मत में ही लिखा है कि एक बिन्दु में असंख्यात जीव हैं उसको लाख वस्त्र छाने तो भी वे जीव पृथक् नहीं होसकते फिर जलपान अवश्य किया जाता है तथा भोजनादिक व्यवहार और नेत्रादिकों की चेष्टा अवश्य किई जाती है फिर तुम्हारा अहिंसा धर्म्म तो नहीं बना (प्रश्न) जितने जीव बचाये जाते हैं उतने बचाते हैं जिसको हम लोग देखते नहीं उनकी पीड़ा में हम लोगों को अपराध नहीं (उत्तर) ऐसा व्यवहार सब मनुष्यों का है जो मांसाहारी हैं वे भी अश्वादिक पशुओं को बचा लेते हैं वैसे तुम लोग भी जिन जीवों से कुछ व्यवहार का प्रयोजन नहीं है जहां अपना प्रयोजन है वहां मनुष्यादिकों को नहीं बचाते हो फिर तुम्हारी अहिंसा नहीं

इसी (प्रश्न) मनुष्यादिकों को ज्ञान है ज्ञान से वे अपराध करते हैं इससे उनको पीड़ा देने मे कुछ अपराध नहीं पश्वादिक जीव बिना अपराध हैं उनको पीड़ा देना उचित नहीं (१) (उत्तर) यह बात तुम लोगों की विरुद्ध है क्योंकि ज्ञान वालों को पीड़ा देना और ज्ञान हीन पशुओं को पीड़ा न देना यह बात विचार शून्य पुरुषों की है क्योंकि जितने प्राणी देहधारी हैं उनमें से मनुष्य अत्यन्त श्रेष्ठ है सो मनुष्यों का उपकार और पीड़ा का न करना सब को आवश्यक है॥

(स) इस विषय में हम संसारिक यह कहलावत (प्रातःकाल का भूला सायङ्काल अपने घर आवे तो उसको भूला हुआ न कहना) स्वामी जी के नवीन "सत्यार्थ प्रकाश,, में जब मांस भक्षण का प्रगट निषेध देखते हैं वा पुस्तक गोकरुणा निधि में मांस खाने को बुरा लिखा देखते हैं तो यही सिद्ध होता है कि प्रथम बार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश,, मे मांस भक्षण के बुरा कहने पर जो लेख लिखा गया है वह स्वामी जी का अज्ञान कृत था क्योंकि पुस्तक गो करुणानिधि मे स्वामी जीने स्वत यह लिखा है

"कदाचित कोई कहे कि पशु को स्वयं मार कर खाने मे दोष होगा बाज़ार से लेकर खाने मे नहीं, यह भी समझ ठीक नहीं मनुजी ने आठ प्रकार के हिंसक लिखे हैं, जैसे (श्लोक) "अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी। संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः,, अर्थ अनुमति (मारने की सलाह) देने मांस के काटने पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिये लेने और

(१) जितने लेख के नीचे लकीर खेंची गई है, उसके खंडनार्थ स्वामीजी अपने ४ नवम्बर सन् १८८० ई० के पत्र मे लिखते हैं कि इसका प्रमाण जैन के "हेकसार,, ग्रन्थ मे है, परन्तु यह कहना स्वामीजी का सर्वथा झूठ है, प्रथम तो "हेकसार,, जैन धर्म का मूल सिद्धान्त वा माननीय ग्रन्थ नहीं, दूसरे उसमें स्वामी जी के पक्ष की पुष्टि करने वाला कोई भी विषय नहीं॥

बेचने, मांस के पकाने और परसने और खाने वाले आठ मनुष्य घातक हिंसक अर्थात् ये सब पापकारी हैं, और भैरव आदि के निमित्त से भी मांस खाना मारना वा मरवाना महापाप कर्म है इसीलिये दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशुआदि के मारने की विधि नहीं लिखी, मद्य भी मांस खाने का ही कारण है इसलिये यहां संक्षेप से थोड़ा सा लिखा है ॥

मांसाहारी और मद्यपि मनुष्य विद्यादि शुभ गुणों से रहित होकर और इन दुर्गुणों में फसकर अपने धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष फलों को छोड़ पशुवत आहार निद्राभय मैथुन आदिक में मग्न होकर अपने मनुष्य जन्म को व्यर्थ कर देते हैं, इसलिये कोई भी मादक पदार्थ सेवन न करना चाहिये ॥

तथा शिव पुराण भागवत पद्म पुराणादि अनेक शास्त्रों में मांस भक्षण का निषेध है परन्तु स्वामीजी महाभारत और वाल्मीकीय रामायण के अतिरिक्त और किसी को प्रमाण नहीं मानते इसलिये हम महाभारतही से कुछ लिखते हैं ॥

श्रुतिहीनान्पश्यति धर्म्मः दयादानेन वर्धते ।
क्षमयास्थाप्यते धर्म्मः क्रोधलोभाद्विनश्यति ॥ १ ॥
अहिंसासत्यमस्तेयम त्यागमैथुनवर्जनम ।
पंचस्वेतेषु धर्मेषु सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥
सर्ववेदाननध्येतुं सर्वयज्ञाश्च भारत ।
सर्वतीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्वन्प्राणिनांदया ॥ ३ ॥
अहिंसालक्षणोधर्मः अधर्मप्राणिनांवधः ।
तस्माद्धर्मार्थिभिर्लोकैः कर्त्तव्याप्राणिनांदया ॥ ४ ॥
लशोणितादिग्धंवस्त्रं शोणितेनैवशुध्यति ।
शोणितादिग्धयथावस्त्रं शुद्धंभवतिवारिणा ॥ ५ ॥
कृतंप्राणवधोयस्तु नास्तियस्योस्त्वहिंसकः ।
ततोऽहिंसात्मको कार्य्यः सदाचरयुधिष्ठिरः ॥ ६ ॥
इंद्रियाणिपशून्कृत्वावेदिंकृत्वातपोमयीं ।
अहिंसामाहुतिंकृत्वा आत्मयज्ञंयजाम्यहम ॥ ७ ॥

ध्यानाग्नोजीवकुण्डस्थे ज्ञानमारुतदीपिते ।
असत्कर्मेधनंक्षिप्ते अग्निहोत्रंकुरूत्तमं ॥ ८ ॥

(इसका भावार्थ) सत्य से धर्म्म की उत्पत्ती और इयाशान से वृद्धि तथा क्षमा से स्थिरता और क्रोध लोभादिक से नाश होता है ॥ १ ॥ अहिंसा में, सत्य में, चोरी त्याग, मैथुन त्याग, परिग्रह प्रमाण, इन पांच धर्म्म कार्य्यों में सर्व प्रकार के धर्म्म समाये हुये हैं ॥ २ ॥ सर्व वेद पढ़ो वा अनेक यज्ञ करो वा सर्व तीर्थ स्नान करो परन्तु प्राणियों की दया विना सर्व कार्य्य अफल है और प्राणियों की दया इन सब से उत्तम है ॥३॥ अहिंसा धर्म्म का लक्षण है और अधर्म्म का लक्षण प्राणियों का वध इसलिये प्राणियों पर दया करनी यही उत्तम है ॥ ४ ॥ रक्त में रगा हुआ वस्त्र रक्त से धोने पर साफ़ नहीं होता, इसी प्रकार हिंसा से पाप नहीं छूटता, दया धर्म्म से शुद्ध होता है ॥ ५ ॥ यज्ञ में निश्चय से प्राणियों का वध होता है इसलिये हिंसक यज्ञ नहीं करना किन्तु हे युधिष्टर अहिंसात्मक यज्ञ करनाही योग्य है ॥ ६ ॥ पांचों इन्द्रियों को पशु मानना और तपरूप वेदिका उसमें दया मई आहुति देकर आत्म यज्ञ करना यही उत्तम है ॥ ७ ॥ ध्यान रूपी अग्नि को जीव रूपी कुण्ड में प्रज्वलित कर असत्य कर्म्म रूपी काष्ट डालना यही सत्य अग्नि होत्र है ॥

"त्रयो वेदस्य कर्तारो धूर्त भांड़ निशाचरा:,, यह श्लोक स्वामी जीने पुस्तक "सर्व दर्शन संग्रह,, से लेकर इस को जैनों का बनाया लिखा और इसीके आशय पर "सत्यार्थ प्रकाश,, का एक पूरा पृष्ट ३९७ का भर दिया है, परन्तु यह श्लोक चार्वाक नास्तिक का है जिसका 'जैन' से कुछ सम्बन्ध नहीं है, और नवीन "सत्यार्थ प्रकाश,, के द्वादश समुल्लास में पृष्ट ४०६ पर स्वामी जी इसको स्वतः चार्वाक मत का स्वीकार करते हैं इसलिये अब इस विषय में हमको विशेष लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥

पुनः पृष्ट ३९८ पंक्ति २ आगे स्वामीजी लिखते हैं कि —

(ङ) हिंसा नाम है वैर का सो योग शास्त्र व्यास जीके भाष्य

धर्म्म की रक्षा करना मनुष्य मात्र का धर्म्म है. और ईश्वर को जैसा जैनी लोग मानते हैं, वैसा कोई भी धर्म्म वाला नहीं मानता जगत् की उत्पत्ति के विषय यथार्थ उत्तर आगे चल कर मिलेगा॥

(इ) फिर पृष्ट ३९८ के अन्त तक यह लिखा है कि—

प्रथम जीव का होना और साधनों का करना पश्चात् यह सिद्ध होगा जब जीवादिक जगत् बिना कर्ता के उत्पन्न हो नहीं होता और प्रत्यक्ष जगत् में नियमों के जगत् में देखने से सनातन जगत् का नियन्ता ईश्वर अवश्य है, फिर उसको ईश्वर नहीं मानना और साधनों में सिद्ध जो भया उसी को ईश्वर मानना यह बात आप लोगों की सब झूठ है आपसे आप जीव शरीर धारण कर लेते हैं, तो शरीर धारण में जीव स्वतंत्र ठहरे फिर छोड़ क्यों देते हैं, क्योंकि स्वाधीनता से शरीर धारण कर लेते हैं फिर कभी उस शरीर को जीव छोड़ेगाही नहीं जो आप कहो कि कर्म्मों के प्रभाव से शरीर का होना और छोड़ना भी होता है, तो पापों के फल जीव कभी नहीं ग्रहण करता क्योंकि दुःख की इच्छा किसी को नहीं होती सदा सुख की इच्छाही रहती है, जब सनातन न्यायकारी ईश्वर कर्म फल की व्यवस्था का करने वाला न होगा तो यह बात कभी न बनेगी। (स) ईश्वर को करता मानने में जीव का करता भी ईश्वर ही मानना पड़ेगा, और जब जीव का करता ईश्वर कोही माना गया तो यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रतिकूल है, क्योंकि कार्य्य अपने उपादान कारण से भिन्न नहीं होता, जब सब जीवों का उपादान कारण ईश्वर है, तो जीव ईश्वर की एकता में क्यों अन्तर मानते हो? और ईश्वर की इच्छा के प्रतिकूल जीव क्यों देखे जाते हैं? इसलिये जीव अनादि है, इसका करता ईश्वर नहीं, यदि करता हरता ईश्वर कोही माना जाय तो उसकी ईश्वरता में बड़ा भारी कलङ्क लग जाय, क्योंकि प्रथम तो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य का घात कराना, फिर घातिक को राजद्वार से फांसी दिलाना, यदि दोनों कर्म्म एक ईश्वर हीके हैं तो वह अन्याई है,

और जो एक कार्य्य ईश्वर ने किया, दूसरा जीव ने किया, तब ईश्वर में सर्वज्ञता सर्वशक्ति मानी इन गुणों का अभाव हुआ जिसका उपादान कारण नहीं है, वह कार्य्य नहीं हो सकता इसी प्रकार जगत का उपादान कारण हैही नहीं, तो उसकी उत्पत्ति क्योंकर संभवे, यहां कोई यह कहै कि ईश्वर की जो (शक्ति) माया है वही जगत् का उपादान कारण है, तब हम पूछते हैं कि वह शक्ति ईश्वर से भिन्न है, वा अभिन्न ? जो कहोगे कि भिन्न है तो प्रश्न करेंगे जड़है, वा चेतन ? तुम कहोगे जड़ है तो हम पूछेंगे नित्य है, वा अनित्य ? आप कहोगे नित्य है, तब तो आप का यह कहना (कि सृष्टि से पहिले केवल ईश्वरही था) असत्य होजायगा । और जो कहोगे अनित्य है तो उसका उपादान कारण और ईश्वर की शक्ति हुई तिस शक्ति की उत्पन्न करने वाली और शक्ति इसी प्रकार करने से अनवस्था दूषण आता है, और जो यह कहोगे कि ईश्वर की शक्ति ईश्वर से भिन्न नहीं है तो फिर सर्व पदार्थ ईश्वर मई समझने होंगे, और ऐसा समझने पर भले बुरे का ज्ञान स्वर्ग, नरक, पाप पुण्य, धर्म्म, अधर्म्म, ऊंच, नीच, राजा राङ्क सुख दुःखादि सबईश्वर मई अर्थात् ईश्वर ही हैं, तो संसार की व्यवस्था किसके लिये है, तथा वेदान्तिक का उपदेश ऋषियों का जन्म क्यों हुआ ? और उसने जगत को किस इच्छा से बनाया ? और बिना इच्छा के बनाना तो किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं जो इच्छा से बनाया तो वह सर्व शक्तिमान नहीं इसलिये ईश्वर को जगत् का कर्ता कहना सर्वथा अनुचित है, यदि यह कहोगे कि ईश्वर सर्व शक्तिमान है वह उपादान कारण के बिनाही सृष्टि रच सक्ता है तो यह सम्भव नहीं, क्योंकि उपादान कारण बिना कार्य्य की सिद्धि नहीं होती, इस विषय में अधिक देखना हो तो पुस्तक सुदृष्टि तरंगिणी में देख ले । और स्वामी जी का यह लिखना कि जीव पाप के फल भोगना नहीं चाहता, और सदैव सुख की आशा रखता है, इस कहने से तो स्पष्ट सिद्ध है कि

जीव का प्रवन्ध ईश्वर के हाथ में नहीं किन्तु उसके कर्माधीन नहीं है, क्योंकि जो जैसा करता है उसका फल तदतही भोगता है, जैसे मिष्टान्न खाने वाले का मुख मीठा और नीम चावने वाले का मुख कड़वा होवे तो यह वस्तु के स्वभाव का फल है, ईश्वर परमात्मा का इसमें क्या दावा है! ॥

(द) पृष्ट ३८८ पंक्ति १ से स्वामीजी लिखते हैं कि " आकाश में चौदह राज्य तथा पदुमशिला मुक्ति का स्थान मानना यहबात प्रमाण और युक्ति से विरुद्ध है, केवल कपोल कल्पना मात्र है, और उसके ऊपर बैठ के बराबर का देखना * और कर्म करने से वहां चला जाना यह भी बात आप लोगों की असत्य है ॥

(स) स्वामी जी महाराज चौदह राज्य भावार्थ राज्यधानी नहीं है किन्तु राज्य एक प्रकार की माप है, और जैनी लोग आकाश में चौदह राज नहीं मानते, किन्तु जैनशास्त्र के लेखानुसार तीन लोक की सम्पूर्ण रचना का प्रमाण चौदह राजूऊंचा है जिसमें नीचे सात राजू चौड़ा मध्य में एक राजू फिर ५ राजू फिर अंत में एक राजू इस प्रकार चौड़ा है, और घनाकार इसका ३४३ राजू है। आपने सुना सुनाया गप्प शप्प जो मन में आया लिख मारा किसी जैन पुस्तक में ऐसा लेख नहीं है, और मोक्ष स्थान सिद्ध शिला का यथार्थ स्वरूप भी आप को समझ में नहीं आया फिर किस आशा पर तर्क करते हैं ॥

(द) पृष्ट ३८८ में ऊपर लिखि लेख से आगे यह लिखा है कि " यज्ञों के विषय में आप कुतर्क करते हैं सो पदार्थ विद्या के नहीं होने से क्योंकि घृत दूध और मांसादिकों के यथावत गुण

* जितने लेख के तले लकीर खैंची गई है, उसकी पुष्टि में स्वामी जी अपने तारीख ४ नवम्बर सन् १८८० ई० के पत्र मे (जो उन्होंने आत्माराम जी को लिखा था) पुस्तक रत्नसार गोतम महावीर की चर्चा का प्रमाण तो देते हैं, परन्तु यह नहीं समझते कि यह वाक्य उलटा हमको ही बाधक है ॥

जानते और यज्ञ का उपकार, कि पशुओं को मारने में थोड़ासा दुख होता है परन्तु यज्ञ में चराचर का अत्यन्त उपकार होता है, इनको जो जानते तो कभी यज्ञ विषय में तर्क न करते. वेदों का यथावत् अर्थ के नहीं जानने से ऐसी बात तुम लोग कहते हो कि धूर्त भाण्ड और निशाचरों ने लिखा है, यह बात केवल अपने अज्ञान और संप्रदायों के दुराग्रह से कहते हो और वेद जो है सो सब के वास्ते हितकारी है किसी सम्प्रदाय का ग्रंथ वेद नहीं किन्तु केवल पदार्थ विद्या और सब मनुष्यों के हित के वास्ते वेद पुस्तक है पक्षपात इसमें कुछ नहीं इन बातोंको जानते तो वेदों का त्याग और खंडन कभी न करते सो वेद विषय में सब लिख दिया है वही देख लेना और यज्ञ में पशुकी मारने से स्वर्ग में जाता है यह बात किसी मूर्ख के मुख से सुन ली होगी ऐसी बात वेद में कहीं नहीं लिखी ॥

(स) स्वामी जी कूप के मैंडुक होकर राजहंस की बराबरी किया चाहैं तो क्योंकर हो, उलटा उपहास्य का कारण है, जैन शास्त्रों के समान तो पदार्थ विद्या का वर्णन अन्य किसी धर्म्म पुस्तक में भी नहीं परन्तु पदार्थ विद्या का जानकार क्या विष्टा वा मूत्रादि मलीन पदार्थों को जानता हुआ उनका भक्षण करने लगेगा। हम लिखते तो बहुत कुछ परन्तु स्वामी जी ने नवीन सत्यार्थ प्रकाश में यज्ञ करने के विधान में पशु बध की आज्ञा हटा दी, इसलिये केवल इतनाही लिखते हैं कि वेद जो सर्व हितकारी हैं तो उनमें पशु बध की आज्ञा है सो जो बध करने में पशु का भला होता है तो इस लाभ से मनुष्य क्यों बञ्चित् रक्खा गया और जो भला नहीं होता तो निरापराधी के गले पर छुरी फेरना कितना बड़ा अन्याय है, फिर कहिये इस से अधिक पक्षपात् और किसको कहते हैं, और हम जैनी लोग तो शुद्ध सनातन ईश्वरोक्त वेदों का अर्थ यथार्थ समझते और मानते परन्तु आपही की बुद्धिमें कुछ नवीन चमत्कार मालूम होता

रहे हो, जब आप की बनाई "सत्यार्थ प्रकाश,, ही एक दूसरे से नहीं मिलते तो अन्य विद्वानों से आप का मत भेद अवश्यही होना चाहिये ॥

(ह) पुनः पृष्ट ३९९ में पूर्वोक्त लेख से आगे और पृष्ट ४०० पंक्ति २० तक में स्वामी जीने यह लिखा है ॥

जीवों के विषय में वे ऐसा कहते हैं कि जीव जितने शरीर धारी हैं, उनके पांच भेद हैं. एक इन्द्रिय. द्विन्द्रिय. त्रीन्द्रिय. चतुरिन्द्रिय. और पंचेन्द्रिय जड़ में एक इन्द्रिय मानते हैं, अर्थात् वृक्षादिकों में से यह बात जैनों की विचार शून्य है क्योंकि इन्द्रिय सूक्ष्म के होने से कभी नहीं देख पड़ती परन्तु इन्द्रिय का काम देखने से अनुमान होता है कि इन्द्रिय अवश्य है सो जितने वृक्षादिकों के बीज हैं उनको पृथिवी में जब बोते हैं तब अङ्कुर ऊपर आता है और मूल नीचे को जाता है सो नेत्रेन्द्रिय उनको नहीं होता तो ऊपर नीचे को कैसे देखता इस काम से निश्चय जाना जाता है कि नेत्रेन्द्रिय जड़ वृक्षादिकों में भी है तथा बहुतलता होती हैं सो वृक्ष. और भीतों के ऊपर चढ़जाती हैं जो नेत्रेन्द्रिय न होती तो उसको कैसे देखता तथा स्पर्शेन्द्रिय तो वेभी मानते हैं. जीभ इन्द्रिय भी वृक्षादिकों में हैं क्योंकि मधुर जल से बागादिकों में जितने वृक्ष होते हैं उनमें खाराजल देने से सूख जाते हैं जीभइन्द्रिय न होता तो स्वाद खारे वा मीठे का कैसे जानते तथा श्रोत्रेन्द्रिय भी वृक्षादिकों में है क्योंकि जैसे कोई मनुष्य सोता होय उसको अत्यन्य शब्द करने से सुन लेता है तथा तोप आदिक शब्द से भी वृक्षों में कम्प होताहै जो श्रोत्रेन्द्रिय न होता तो कम्प क्यों होता। क्योंकि अकस्मात् भयङ्कर शब्द के सुनने से मनुष्य पशु पक्षी अधिक कम्प जाते हैं वैसे वृक्षादिक भी कम्प जाते हैं, यदि कोई कहे कि वायुके [illegible] से वृक्ष में चेष्टा हो जाती है अच्छा तो मनुष्यादिकों कं वायु की चेष्टा से शब्द सुन पड़ता है इससे वृक्षादिकों

रोग धूप के देने से छूट जाता है, जो नासिका इन्द्रिय न होता तो गन्ध का ग्रहण कैसे करता इस से नासिका इंद्रिय भी वृक्षादिकों में है, तथा त्वचा इन्द्रिय भी है क्योंकि कुमोदिनिकमल लज्जावती अर्थात् छुई मुई औषधि और सूर्य्यमुखी आदिक पुष्पों में और शीत तथा उष्ण वृक्षादिकों में भी जान पड़ता है क्योंकि शीत तथा अत्यन्त उष्णता से वृक्षादिक कुमला जाते हैं, और सूख भी जाते हैं, इससे तत इन्द्रियों का कर्म देखने से तत् इन्द्रिय वृक्षादिकों में अवश्य मानना चाहिये यह भ्रम जैन सम्प्रदाय वालों को स्थूल गोलक इन्द्रियों के नहीं देखने से हुआ है सो इससे जो लोग इन्द्रियों को नहीं जान सकते परन्तु कार्य्य द्वारा सब बुद्धिमान लोग वृक्षादिकों में भी इन्द्रिय जानते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं और जहां जीव होगा वहां इन्द्रिय अवश्य होगी, क्योंकि इन सब शक्तियों का जो संघात इसी को जीव कहते हैं, जहां जीव होगा वहां इन्द्रिय अवश्य होगी ॥

(स) स्वामी जी महाराज जब आप को यही मालूम नहीं है कि इन्द्रिय किस को कहते हैं तथा उसका गुण क्या है तो उस पर तर्क करने को क्यों उद्यमी हुये? आप लिखते हो वृक्षादिक के बीज का अंकुर तो ऊपर को आता है, और मूला नीचे को जाता है, इससे उसके चक्षु इन्द्रिय का होना, और मधुर जल से बागादिक में उन्नति और खारे जल से सूख जाने से उनमें जिव्हा इन्द्रिय का सद्भाव और भयङ्कर शब्द होने से वृक्षादिक का कम्पना सो श्रोत्रेन्द्रिय की सिद्धि तथा वृक्षादिक में धूप देने से रोगादिक का नाश जिससे नासिका इन्द्रिय का होना और छुई, मुई, लज्जावन्ती सूर्य्यमुखी आदिक वृक्षों की चेष्टा से त्वचा इन्द्रिय का होना यह वृक्षादिक में पांचों इन्द्रिय सिद्ध करने के लक्षण और प्रमाण हैं इसको देख कर हम को बड़ाही आश्चर्य्य होता है, स्वामी जी महाराज अग्नि प्रज्वलित होने पर धूम्र का ऊर्द्ध गमन करना और सूर्य्य की किरणों के आश्रय कुहिर

जल का ऊंचा उठना तथा कागज़ के बने पतङ्गादिक का आकाश में उड़ना, और मधुर जल से अनेक जल पदार्थों (लवणादिक) का बिगड़ना और खारी से उत्पन्न होना, तथा भयङ्कर शब्द से अनेक मन्दिर वा बड़े२ मकानों में कम्प होना और अनेक मकानों तथा तृण समूह का गिर पड़ना, प्रकट रूप से देखने में आता है, और जड़ वस्तु में जड़ वस्तु कोही धूनी देने से उसका रोग दूर करते हैं, जैसे सज्जी, चूना, फिटकरी के योग से अनेक जड़ वस्तु शुद्ध होती हैं, और चुम्बक पाषाण के अनेक खेल देखने से क्या जड़ पदार्थ को ज्ञानवान मनुष्य जीवधारी मान लेवेंगे? और यह कहना भी स्वामी जी का ठीक नहीं है कि "कार्य द्वारा सब बुद्धिमान लोग वृक्षादिक में इंद्रिय मानते हैं,, क्योंकि अनेक प्रकार पुतली मनुष्य वा पशु आकार ऐसी बनाई जाती हैं जो देखने सुनने चाखने सूंघने आदि तथा स्पर्श रस का सम्पूर्ण कार्य करती हैं, तो क्या उनको कोई स्वामी जी के समान सजीव समझ सकता है? नहीं बिल्कुल नहीं, जो निर्जीव है वह निर्जीवही है और जो इंद्रियधारी जीव है, सोही सजीव है, क्या इतनी बुद्धि परही आप लिख बैठे कि जैनियों को पदार्थ विद्याका ज्ञान नहीं स्वामी जी महाराज अभी तक आप को इतना भी मालूम नहीं? है कि जीव क्या है? और निर्जीव क्या ? जैन शास्त्रों में चौरासी लक्ष योनि जीव की इस प्रकार कही हैं, पृथ्वी कायलक्ष, ७ अपकायलक्ष, ७ तेजकायलक्ष ७ वायुकायलक्ष, ७ नित्य निगोद लक्ष, ७ इतर निगोद साधारण वनस्पति कायलक्ष, ७ प्रत्येक वनस्पति कायलक्ष, १० द्वेइंद्रियलक्ष२ तीनइंद्रिय लक्ष२ चौइंद्रिय लक्ष२ पंचेन्द्रियलक्ष ४ देवलक्ष ४ नारकीलक्ष ४ मनुष्य लक्ष १४। और इसके विशेष और भिन्न २ पृथक भेद हैं।

(ह) पृष्ट ४०० पंक्ति २१ से पृष्ट ४०१ पंक्ति ७ तक स्वामी जी लिखते हैं कि जैनों का ऐसा भी कहना है कि तालाब बावली कुआ नहीं बनवाना क्योंकि उनमें बहुत जीव मरते हैं, जैसे तालब के रचने से भैंसी उसमें बैठगी, उसके ऊपरमैषा बै-

ठगा उसको औशा लेजायगा और मार भी डालेगा उसका पाप तालाव बनाने वाले को होगा, क्योंकि उस तालाव के जल से असंख्यात जीव सुखो होंगे उसका पुण्य कहां जायगा ? सो पाप के वास्ते तालाव कोई नहीं बनाता किन्तु जीव सुख के वास्ते बनाते हैं इस से पाप नही होसक्ता परन्तु जिस देश में जल नहीं मिलता होय उस देश में बनाने से पुण्य होता है. जिस देश में बहुत जल मिलता होवे उस देश में तड़ागादिकों का बनाना व्यर्थ है और वे बड़े२ मन्दिर और बड़े २ घर बनाते हैं उनमें क्या जीव नहीं मरते होंगे सो लाखहा रुपये मन्दिरादिकों में मिथ्या लगा देते हैं, जिनसे कुछ संसार का उपकार नहीं होता और जो उपकार की बात है उसमें दोष लगातेहैं ॥

(स) उपरोक्त लेख जैन के किसी भी शास्त्र में नहीं है, इसलिये स्वामी जी का तर्क स्वकपोल कल्पित और सर्वथा मिथ्या है, किन्तु विद्वान पुरुष विचार कर सकते हैं कि जिस धर्म्म में दयाही प्रधान हो उसमें ऐसे कार्य्यों का करना कैसे बुरासमझा जाय जो लोकोपकारी हो. जैन के सम्पूर्ण कथा पुराणों जहांमें नगर ग्राम गढ़ बाटादिक का वर्णन है उन की शोभा के लिये वापीकूप तड़ागादिक का होना अवश्य कहा है सो यदि वापी कूप तड़ागादिक का बनाना बुरा होता तो शास्त्रकार उन को भला क्यों कहते ? हां ! जैसे कोई कृपण पुरुष अपने जीवित वृद्ध पिता को पेट भर भोजन भी नहीं देवे परन्तु मरे हुये की शव पर बहुमूल्य दुशाला डाल कर यह सिद्ध करे कि यह पुत्र निज पिता की बड़ी भक्ति करता होगा तो ऐसा करने से लाभ के बदले उलटी बदनामी है, इसी प्रकार कोई मनुष्य अनेक पाप कर्म करके द्रव्य एकत्रित कर उस से पृथ्वीकाय, जल काय, वायुकाय आदि के असंख्य जीवों का बध कर एक कूप अथवा वापी, तड़ाग बनवाता है वह पुण्य के बदले पापकाही भागी होता है, वापी, कूप, तड़ाग वा मन्दिरादि बनवाना उसी मनुष्य का ठीक है जो वापी कूप तड़ाग वा मन्दिरादिक में ल-

गाये हुये द्रव्य से अधिक द्रव्य किसी अन्य धर्म्म कार्य्य में भी लगावे और नाम का भूखा नबने, स्वामी जी को मन्दिरों के होने से कुछ लाभ नहीं दीखता यह उनकी पक्षपात और द्वेष भरी उत्तम समझ का फल है ॥

(ड) पृष्ठ ४०१ पंक्ति ८ से स्वामी जी लिखते हैं" फिर कहते हैं कि जैन का धर्म्म श्रेष्ट है, और इस के बिना मुक्ति भी किसी को नहीं होती सो यह बात उनकी मिथ्या है, क्योंकि ऐसी बात और ऐसे कर्मों से मुक्ति कभी नहीं होसक्ती मुक्ति तो मुक्ति के कर्म्मों से सर्वत्र होती है अन्यथा नहीं ॥

(च) धर्म्म के चिन्ह दया १ (अहिंसा) अदत्तादान न लेना२ (चोरी का त्याग) मैथुन का त्याग ३ सत्य भाषणकरणा ४ सन्तोष धारना ५ यह पांच मुख्य हैं, सो जिसने वन्ध्यागाय को मार कर यज्ञ हवन करने की तथा मांस भक्षण की आज्ञा दई और वृक्षा-दिक को पांच इन्द्रिय वाला लिखा। स्त्री जहां से मिले ले लेनी कही। एक स्त्री ११ पति तक नियोग करे यह लिखा। वेदों के अर्थ मनमाने स्वकपोल कल्पित बना दिये। और संन्यासी होकर पुस्तक बेचना छापाखाना खोलना द्रव्य पास रखना भला समझा वह जैन धर्म्म को क्या किसी धर्म्म को भी अच्छा नहीं समझेगा परन्तु जैनी लोग यह हट नहीं करते कि धर्म्म जैन का ही अच्छा है, किन्तु वे कहते हैं कि जिस धर्म्म में हिंसा १ झूठ २ चोरी ३ मैथुन ४ का त्याग और परिग्रह प्रमाण यथार्थ रीति पाया जावे वही उत्तम और श्रेष्ट धर्म्म है ॥

(छ) फिर देखो पृष्ट ४०१ पंक्ति ११ से स्वामी जी लिखते हैं "जितना मूर्ति पूजन चला है सो जैनोंही से चला है, यह भी अनुपकार का कर्म्म है, इससे कुछ उपकार नहीं संसार में बिना अनुपकार के सो जैनों को बड़ा भारी आग्रह है जो कोई कुछ पुण्य किया चाहता है धनाढ्य सो मन्दिरही बना देता है और प्रकार का दान पुण्य नहीं करते हैं ॥

(ज) स्वामी जी बालमीकीय रामायण को जैन धर्म्म से प-

हिले लिखो गई समझो हुयी हैं, और उसके सर्ग ४४ श्लोक ४२ ४३ में लिखा है कि रावण शिवमूर्ति की पूजन करता था तो फिर किस मुंह से लिखते हैं कि मूर्तिपूजा प्रथम जैनियों से ही चली है, और मूर्तिपूजा से जो कुछ ईश्वोपकार होता है उस विषय के तो जक्त में अनेक लेख पुस्तकादि विद्यमान हैं, जिनका यहां लिखना व्यर्थ है, और जैनियों के बराबर पुण्यदान करने वाला तो दूसरा होना ही कठिन है, परन्तु आर्य्य समाज में शामिल होने तथा स्वामीजी कृत वेद भाष्य वा सत्यार्थ प्रकाशादि व्यर्थ पुस्तकों के खरीदने से जैनियों का मुंह मोड़ना स्वामी जी को उनका कृपण होना सिद्ध होता है। खूब॥

(८) पुनः पृष्ठ ४०१ पंक्ति १५ से स्वामी जी यह लिखते हैं कि उनने जैन गायत्री भी एक बना लई है और एक यती होते हैं उनको श्वेताम्बर कहते दूसरा होता है दिगम्बर जिसको मुनि और श्रावक कहते हैं उनमें से ढूंढिये लोग मूर्तिपूजन को नहीं मानते और लोग मानते हैं उनमें एक श्रीपूज्य होता है उसका ऐसा नियम होता है कि इतना धन जब सेवक लोग दें तब उस के घर में जाय और मुनिदिगम्बर होते हैं वे भी उनके घर में जब जाते हैं तब आगे आगे थान बिछाते चले जाते हैं। और उनके मत में न होय वह श्रेष्ठ भी होवे भी उसको सेवा अर्थात् जल तक भी नहीं देते (१) यह उनका पक्षपात से अनर्थ है

---

(१) जिस लेख के नीचे लकीर खेंची गई है उसकी पुष्टि की लिये भी स्वामी जी अपने ४ नवम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में (जो आत्माराम जी को लिखा था) लिखते हैं कि पुस्तक हेक-सार पृष्ठ २२१ पंक्ति ३ से लेकर पंक्ति ८ तक लिखा है देख लीजिये। परन्तु यह प्रमाण स्वामी जी का सर्वथा झूठ है, उक्त पुस्तक के पूर्वोक्त लेख का वह आशय नहीं है जो स्वामीदयानन्द सरस्वती ने समझा और अपने रागियों को जिस से भ्रम में

किन्तु जो श्रेष्ट होय उसकी सेवा करनी चाहिये दुष्ट की कभी नहीं यह सब मनुष्यों के वास्ते उचित है॥

(ख) हम पूछते हैं क्या जैन गायत्री स्वामी जी के सामने जैनों ने बनाई थी? या किसी पुस्तक में उसके बनाये जाने का समय लिखा है? जो यह सिद्ध होकि अवश्य यह अमुक काल में बनी थी? स्वामी जी तर्क करने पर तो उद्यमी होगये परन्तुयह नहीं जानते श्वेताम्बर किसको कहते हैं और दिगम्बर किसको और मुनि वा श्रावक तथा जैनी वा श्रावक में क्या भेद है? ढूंढिये लोग कब से? कहां से और क्यों उत्पन्न हुये? श्रीपूज्य इनमें होता है कि नहीं? स्वामी जीने भोजन के समय किस साधु को द्रव्य लेते देखा? जिसका छूना भी साधु को उचित नहीं है, और जो नग्न दिगम्बर होगया वह थालों के ऊपर क्योंकर पाव रख सकता है, वर्तमान समय में श्रेष्ट द्रव्यवान को कहते हैं, और द्रव्य स्वतः पाप का कारण है सो जैनी लोग द्रव्य के लोलपी नहीं किन्तु त्यागी होते हैं द्रव्यवान को अपना कल्याण कारी नहीं समझे तो क्या दोष है? परन्तु पूर्वोक्त लेख स्वामी जी का सर्वथा मिथ्या है, जैनी लोग दया धर्म्म के धारी कभी भी किसी से द्वेष बुद्धि नहीं रखते। इस लेख में स्वामी जी को पक्षपात के कारण भ्रम उत्पन्न होगया है॥

(ह) फिर स्वामी जी पृष्ट ४०१ की अंतिम पंक्ति से पृष्ट ४०२ पंक्ति ८ तक लिखते हैं कि"

जो ढूंढिये होते हैं उनके केश में जूआ पड़ जाय तोभी नहीं निकालते और हजामत नहीं बनवाते किन्तु उनका साधु जब आता है तब जैनी लोग उसकी डाढ़ी मोंछ और सिर के बाल नोच लेते हैं (१) जो उस वक्त वह शरीर कपावे अथवा नेत्र से

(१) जिस लेख के नीचे लकीर खैंची गई है, उसके मण्डनार्थ भी स्वामी जी ने अपने ४ नम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में कुछ लिखा है परन्तु सब मिथ्या है॥

झड़ गिरावे तब सब कहते हैं कि यह साधु नहीं भया है क्योंकि इसको शरीर के ऊपर मोह है विचार करना चाहिये कि ऐसी २ पीड़ा और साधुओं को दुःख देना और उनके हृदय में दया का लेश भी नहीं आता यह उनकी बात बहुत मिथ्या है क्योंकि बालों के नोचने से कुछ नहीं होता जब तक काम क्रोध लोभ मोह भय शोकादिक दोष हृदय से नहीं नोचे जायंगे यह ऊपर का सब ढोंग है॥

(ख) ऊपर लिखा लेख सर्वथा झूठ और स्वामीजी की स्वकपोल कल्पना है, क्योंकि प्रथम तो हजामत का बनवानाही थोड़े दिनों से चला है इस से पहिले सम्पूर्ण पृथ्वी पर केश लोच करने ही का प्रचार था और जुआं भी उसी मनुष्य के पड़ती है जो संसारिक कार्य्यों में फसा रह कर काम भोग ग्रहारम्भ में निमग्न रहता है, साधुजन जो नियत समय पर लोच कर लेते हैं और सदैव शुद्ध रहते हैं क्यों जुआदिक के दुःख उठा सकते हैं और जो किसी कर्म योग पड़ भी जायं तो लोचके समय अवश्य जुदी हो जाती हैं कुछ उनके शिर पर नाचने वाले लड़कों के समान केश समूह नहीं होता जो उनके सदैव धोने बहाने तैलादिक लगाने का श्रम करना पड़े, और जैनी लोग साधुओं के बाल नहीं नोचते, यह स्वामी जी का भ्रम है कि जैनी नोचते हैं॥

(ग) फिर पृष्ट ४०२ पंक्ति ८ से स्वामी जी ने लिखा है कि उनमें जितने आचार्य्य भये हैं उनके बनाये ग्रन्थों को वेद मानते हैं सो १८ ग्रन्थ वे हैंतथा महाभारत रामायण पुराण स्मृतियां भी उन लोगोंने अपने मतके अनुकूल ग्रंथ बना लिये हैं अन्य भगवती गीता ज्ञान चारित्रादिक भी ग्रंथ नाना प्रकारके बना लियेहैं उनमें अपने सम्प्रदाय की पुष्टि और अन्य सम्प्रदायों का खंण्डन कपोल कल्पना से अनेक प्रकार लिखा है जैसे कि जैन मार्ग सनातन है प्रथम सब संसार में जैन मार्ग था परन्तु कुछ दिनों से जैन मार्ग को छोड़ दिया है लोगों ने सो बड़ा अन्याय है क्योंकि जैन मार्ग छोड़ना किसी को उचित नहीं है, ऐसी २ गाथा अपने

ग्रन्थों में जैनों ने लिखी हैं सो सब सम्प्रदाय वाले अपनी २ कथा ऐसीही लिखते हैं और कहते हैं, इसमें प्रायः अपने मतलब के लिये बातें मिथ्या २ बना लई हैं ॥

(घ) जब हम यह देखते हैं कि स्वामी जी ने ५८ वर्ष की आयु तक बड़ परिश्रम द्वारा जैन ग्रन्थों का खोज लगाया और दोवार सत्यार्थ प्रकाश के द्वादश समुल्लास में उसका वर्णन किया परन्तु यथार्थ भेद न पाया और प्रथम बार के छपे सत्यार्थ प्रकाश में जो नाम जैन ग्रन्थों के लिख दिये थे नवीन सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में उनके प्रतिकूल मनमाना लिख दिया यथार्थ भेद से वंचित ही रहे तो उपरोक्त लेख पर आलोचना करने की कुछ आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस विषय में स्वामी जी के स्वतः लेखों से पाया जाता है कि उनके भ्रम की अभी तक निवृत्ति नहीं हुई है, और जहां स्वामी जीने भारत के सम्पूर्ण धर्मों की निन्दा करी है वहां यदि जैन की बुराई नहीं करते तो पक्षपाती समझे जाते उनको सब के साथ में जैनियों को भी बुरा बतलाना उचित ही था और जैन नवीन हैं वा सनातन इस विषय पर "दयानन्द छल कपट दर्पण प्रथम भाग„ में सविस्तार लेख किया गया है ॥

(ह) पृष्ठ ४०२ पंक्ति २० से पृष्ठ ४०३ पंक्ति १८ तक निम्न लिखित श्लोक और कुछ लेख लिखा है ॥

यावज्जीवं सुखंजीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः ॥
भस्मीभूतस्य देहस्यपुनरा गमनंकुतः ॥ १ -
यावज्जीवेत्सुखंजीवे दृणंकृत्वाघृतं पिवेत् ।
अग्निहोत्रंत्रयो वेदास्त्रिदंण्डंभस्म गुण्ठनम । २ ।
बुद्धिपौरुषहीना नां जीविकेतिबृहस्पतिः ।
अग्निरुष्णोजलंशीतं शीत स्पर्शस्तथानिलः । ३ ॥
केनेदं चित्रितंतस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः ॥
न स्वर्गोनाऽपवर्गो वाने वात्मापार लौकिकः ॥ ४ ॥

नैववर्णाश्रमादीनां क्रियाश्चफलदायिकाः ॥
अग्निहोत्रंत्रयो वेदास्त्रिदंण्डं भस्मगुण्ठनम् ॥ ५ ॥
बुद्धिपौरुषहीनानांजीविका धातृनिर्मिता ॥
पशुश्चेन्निहतःस्वर्ग ज्योतिष्टोमेगमिष्यति ॥ ६ ॥
स्वपितायजमानेन तत्रकस्मान्न हिंस्यते -
मृतानामपिजन्तूनां श्राद्धंचेत्तृप्तिकारणम् ॥ ७ ॥
गच्छतामिहजन्तूनां व्यर्थपाथेयकल्पनम् ॥
स्वर्गस्थितायदातृप्तिंगच्छेयुस्तत्रदानतः ॥ ८ ॥
प्रासादस्योपरिस्थाना मत्रकस्मान्नदीयते ॥
यदिगच्छेत्परंलोकं देहादेषविनिर्गतः ॥ ९ ॥
कस्माद्भूयोनचायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥
ततश्चजीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह ॥ १० ॥
मृतानांप्रेतकार्याणिनत्वन्यद्विद्यतेक्वचित् ॥
त्रयोवेदस्यकर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः ॥ ११ ॥
जर्फरीतुर्फरी त्यादिपण्डितानां वचःस्मृतम् ॥
अश्वस्यात्रहि शिश्नन्तुपत्नी ग्राह्यंप्रकीर्तितम् ॥ १२ ॥
भण्डैस्तद्वत्परं चैवग्राह्यजातं प्रकीर्तितम् ॥
मांसानांखादनं तद्वन्निशाचर समीरितम् ॥ १३ ॥

इत्यादिक श्लोक जिनोंने बना रक्खे हैं और अर्थ तथा काम दोनों पदार्थ मानते हैं लोक सिद्ध जो राजा सोई परमेश्वर और ईश्वर नहीं पृथ्वी जल अग्नि वायु इनके संयोग से चेतन उत्पन्न होके इन्हीं में लीन हो जाता है और चेतन पृथक् पदार्थ नहीं ऐसेर प्राकृत दृष्टांत देके निर्बुद्धि पुरुषों को बहका देते हैं जो चार भूतों को योग में चेतन उत्पन्न होता तो अब भी कोई चारभूतों को मिला के चेतन देखला दे सो कभी नहीं देख पड़ैगा इन स्वभाव से जगत की उत्पति आदिक का उत्तर ईश्वर और सृष्टि के विषय में लिख दिया है वहीं देख लेना ॥

(घ) पूर्वोक्त लेख स्वामी जी ने बिना बिचारे पुस्तक सर्व दर्शन संग्रह से लेकर लिखे और उक्त पुस्तक के लिखने वाले ने

बृहस्पति नास्तिक ग्रंथोंसे लिया है, और जो पत्र स्वामी जी ने तारीख ४ नवम्बर सन् १८८० ई० को आत्मराम जी के नाम लिखा उसके प्रश्न ६ के उत्तर में भी अपने झूठ वचन का पालन क्यों किया है परन्तु यह हट धर्मी और लेख सर्वथा मिथ्या और जैन धर्म्म से भिन्न है, अच्छा हुआ जो स्वामी जी ने नवीन सत्यार्थ प्रकाश में इसको स्वतः ही जैन का नहीं कहा और चार्वाक का मान लिया, नहीं तो हमको इसका यथार्थ भेद और स्वामी जी की अधिक पोल खोलनी पड़ती और पृष्ठ ४०२ पंक्ति १८ से आगे पृष्ठ ४०७ के अन्त तक स्वामी जीने जो कुछ लिखा वह जैन के किसी भी ग्रन्थ का लेख नहीं है किन्तु वह सूत्र शाक्य मुनि गौतम कृत बौद्ध धर्म के हैं जिनको स्वामी जी ने अपने अज्ञान पने से जैन का समझ उन पर आलोचना करी क्या यह है ॥

(८) भूतेभ्यो मूर्त्युपादनवत्तदुपादनम् इत्यादिक गौतम मुनि जी के किये सूत्र नास्तिकों के मत दिखाने के वास्ते लिखे जाते हैं और उनका खंडन भी, सो जान लेना जैसे पृथिव्यादिक भूतों से बालु पाषाण गेरु अंजनादिक स्वभाव से कर्ता के बिना उत्पन्न होते हैं, वैसे मनुष्यादिक भी स्वभाव से उत्पन्न होते हैं न पूर्वापर जन्म न कर्म्म और न उनका संस्कार किन्तु जैसे जल में फ़ेन तरङ्ग और बुद्बुदादिक अपने आप से उत्पन्न होते हैं वैसे भूतों से शरीर भी उत्पन्न होता है उसमें जीव भी स्वभाव से उत्पन्न होता है उत्तर न साध्य समत्वात् २ गौ० जैसे शरीर की उत्पत्ति कर्म संस्कार के बिना सिद्ध मानते हो, वैसे बालुकादिक की उत्पत्ति सिद्ध करो बालुकादिकों के पृथिव्यादिक प्रत्यक्ष निमित्त और कारण हैं वैसे पृथिव्यादिक स्थूल भूतों का कारण भी सूक्ष्म मानना होगा ऐसे अनवस्था दोष भी आजायगा और साध्य सम हेत्वा भास के नाईं यह कथन होगा, और इस से देहोत्पति में निमितान्तर अवश्य तुमको मानना चाहिये नोत्पति निमित्त त्वान्मातापित्रोः ३ गौ० यह नास्तिक का अपने पक्ष का समाधान है, कि शरीर की उत्पत्ति का निमित्त माता और पिता है किन्

से कि शरीर उत्पन्न होता है, और वालुकादिक निर्बीज उत्पन्न होते हैं इस से साध्यसम दोष हमारे पक्ष में नहीं आता क्योंकि माता पिता खाना पीना करते हैं उस से वीर्य बीजशरीर का होजायगा उत्तर "प्राप्तोचानियमात् ४ गो० „ ऐसा तुम मत कहो क्योंकि इसका नियम नहीं माता और पिता का संयोग होता है और वीर्य भी होता है तोभी सर्वत्र पुत्रोत्पत्ति नहीं देखनेमें आती इससे यह जो आप का कहा नियम सो भंग होगया इत्यादिक नास्तिक के खण्डन में न्याय दर्शन में लिखा है जो देखा चाहै सो देख ले ॥

(स) ऊपर लिखे लेख का जैन धर्म्म से कुछ सम्बन्ध नहीं इसलिये समीक्षा करने की क्या आवश्यकता है ?

(द) दूसरे नास्तिक का ऐसा मत है कि अभावाद्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्यप्रादुर्भावात् ५ गो० अभाव अर्थात् असत्य से जगत की उत्पत्ति होती है क्योंकि जैसे बीज का नाश करके अंकुर उत्पन्न होता है वैसे जगत की उत्पत्ति होती है, उत्तर व्याघातादप्रयोगः ६ गो० यह तुम्हारा कहना अयुक्त है क्योंकि व्याघात के होने से जिसका मर्द्दन होता है बीज के ऊपर भाग का यह प्रकट नहीं होता है और जो अङ्कुर प्रकट होता है उसका मर्द्दन नहीं होता इस से यह कहना आप का मिथ्या है ॥

(स) यह ऊपर लिखा हुआ लेख भी जैनियों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है ॥

(द) तीसरे नास्तिक का मत ऐसा है ईश्वरः कारणां पुरुष कर्माफल्य दर्शनात् ७ गो० जीव जितना कर्म कर्ता है उसका फल ईश्वर देता है, जो ईश्वर कर्म फल न देता तो कर्म का फल कभी न होता क्योंकि जिस कर्म का फल ईश्वर देता है, उसका तो होता है और जिसका नहीं देता उसका नहीं होता इस में ईश्वर कर्म का फल देने में कारण है, उत्तर पुरुषकर्माभावेफला निष्पतेः ८ गो० जो कर्म फल देने में ईश्वर कारण होता तो पुरुष कर्म कर्ता तोभी ईश्वर फल देता सो बिना कर्म करने से जीव

को फल नहीं देता इस से क्या जाना जाता है कि जो जीव कर्म जैसा कर्ता है वैसा फल आपही प्राप्त होता है इस से ऐसा कहना व्यर्थ है ॥

(स) यहां स्वामी जी ने नास्तिक को तो ईश्वरवादी और अपने आप को नास्तिक सिद्ध किया है, धन्य महाराज धन्य ! क्या अच्छी बुद्धि है ॥

(द) फिर भी वह अपने पक्ष को स्थापन करने के वास्ते कहता है कि तत्कारितत्वादहेतुः ८ गो० ईश्वरही कर्म का फल और कर्म कराने में कारण है जैसा कर्म कर्ता है वैसा जीव करता है अन्यथा नहीं, उत्तर जो ईश्वर कराता तो पाप क्यों कराता और ईश्वर के सत्य संकल्प के होने से जीव जैसा चाहता है वैसाही हो जाता और ईश्वर पाप कर्म करा के फिर जीव को दण्ड देता तो ईश्वर को भी जीव से अधिक अपराध होता तो उस अपराध का फल जो दुःख सो ईश्वर को भी होना चाहिये और केवल छली कपटी और पापों के कराने से पापी हो जाता इस से ऐसा कभी न कहना चाहिये कि ईश्वर कराता है ॥

(स) प्यारे पाठक वृन्द खयाल करने की बात है यहां स्वामी जी ईश्वरोपासिक होकर भी अनीश्वरवादी बनने की इच्छा रखते हैं, और यह लेख भी जैनी लोगों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है ॥

(द) चौथे नास्तिक का ऐसा मत है कि अनिमित्त तो भावों त्पत्तिः कण्टक तैक्ष्ण्यादि दर्शनात् १० गो० निमित्त के बिना पदार्थों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि वृक्ष में कांटे होते हैं वेभी निमित्त के बिनाही तीक्ष्ण होते हैं कण्टकों की तीक्ष्णता पर्वत धातुओं की चित्रता पाषाणों की चिक्कनता जैसे निर्मित देखने में आती है वैसेही पृथ्वीआदिक संसार की उत्पत्ति कर्ता के बिना होती है इसका कर्ता कोई नहीं उत्तर अनिमित्त अनिमित्तान्निमित्ततः ११ गो० बिन निमित्त के सृष्टि होती है ऐसा मत कहो क्योंकि जिस से जो उत्पन्न होता है वही उसका निर्मित है वृक्ष

पर्वत पृथिव्यादिक उनके निमित्त जानना चाहिये वैसेही पृथिव्यादिक की उत्पत्ति का निमित्त परमेश्वरहीहै इस से तुम्हारा कहना मिथ्या है ॥

(म) यह ऊपर लिखा लेख भी जैनका नहीं, किन्तु बौद्धोंकाहै, ॥

(ह) पांचवे नास्तिक का ऐसा मत है कि सर्वमनित्य मुत्पति विनाश धर्मकत्वात् १२ गो० सब जगत अनित्य है क्योंकि इसकी उत्पत्ति और विनाश देखने में आता है जो उत्पत्ति धर्म्म वाला है सो अनुत्पन्न नहीं होता जो अविनाश धर्म्म वाला है सो विनाश कभी नहीं होता, आकाशादि भूत शरीर पर्यन्त स्थूल जितना जगत है और बुद्यादि सूक्ष्म जितना जगत है सो सब अनित्यही जानना चाहिये। उत्तर नानिततानित्यत्वात् १३ गो० सब अनित्य नहीं है क्योंकि सब की अनित्य होगी तो उस के नित्य होने से सब अनित्य नहीं भया और जो अनित्यता अनित्य होगी तो उसके अनित्य होने से सब जगत नित्य भया इस में सब अनित्य है ऐसा जो आप का कहना सो अयुक्त है फिर भी वह अपने मत को स्थापन करने लगा नद नित्यत्वमग्नेर्दाह्यं विनाश्यानुविनाशवत् १४ गो० वह जो हमने अनित्यता जगत् की कही सो भी अनित्य है क्योंकि जैसे अग्नि काष्ठादिक का नाश करके अपने भी नष्ट होजाता है वैसे जगत् को अनित्य कर के आप भी अनित्यता नष्ट होजाती है। उत्तर नित्यस्याप्रत्याख्यानयथोपलब्धिव्यवस्थानत् १५ गो० नित्य का प्रत्याख्यान् अर्थात् निषेध कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिसकी उपलब्धि होतीहै और जो व्यवस्थित पदार्थ है उसकी अनित्यता नहीं हो सकती जो नित्य है प्रमाणों से और जो अनित्य सो नित्य नित्य ही होता है और अनित्य अनित्यही होता है क्योंकि परमसूक्ष्म कारण जो है सो अनित्य कभी नहीं होसकता और नित्य के गुण भी नित्य है तथा जो संयोग से उत्पन्न होता है और संयुक्त के गुण वे सब अनित्य है नित्य कभी नहीं होसक्ते क्योंकि पृथक् पदार्थों का संयोग होता है वो फिर भी पृथक् होजाते हैं इसमे

कुछ सन्देह नहीं ॥

(ड) यह लेख भी जैन का नहीं बौद्धही का है ॥

(द) छठा नास्तिक यह है कि सर्वं नित्यं पंचभूतनित्यत्वात् १६ गो० जितना आकाशादिक यह जगत् है जो कुछ इन्द्रियों से स्थूल वा सूक्ष्म जान पड़ता है सो सब नित्यही है पांच भूतों के नित्य होने से, क्योंकि पांच भूत नित्य हैं उनसे उत्पन्न भया जो जगत् सोभी नित्यही होगा। उत्तर नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः १७ गो० जिसका उत्पत्ति कारण देख पड़ता है और विनाश कारण वह नित्य कभी नहीं होसक्ता इत्यादिक समाधान न्याय दर्शन में लिखा है सो देख लेना ॥

सातवां नस्तिक का मत यह है कि सर्वं पृथक् भाव लक्षण पृथक्त्वात् १८ गो० सब पदार्थ पृथक् २ ही हैं, क्योंकि घट पटादिक पदार्थों के पृथक् २ चिन्ह देख पड़ते हैं इस से सब वस्तु पृथक् २ ही हैं एक नहीं। उत्तर नानेकलक्षणैरेक १९ गो० गंधादिक गुण है और सुखादिक घड़े के अवयव भी अनेक पदार्थों से एक पदार्थ युक्त प्रत्यक्ष देख पड़ता है इस से सब पदार्थ पृथक् २ है ऐसा जो कहना सो आप का व्यर्थ है ॥

आठवां नास्तिक का मत यह है कि सर्व मभावो भावष्वित रेतराभवसिद्धेः २० गो० यावत जगत् है सो सब अभावही है क्योंकि घड़े में वस्त्र का अभाव और वस्त्र में घड़े का अभाव तथा गाय में घोड़े का और घोड़े में गाय का अभाव है इस से सब अभावही है। उत्तर नस्वभावसिद्धभावानाम् २१ गो० सब अभाव नहीं है क्योंकि अपने में अपना अभाव नहीं होता है और जो अभाव होता तो उसकी प्राप्ति और उससे व्यवहार सिद्धि कभी नहीं होती इससे सब अभाव है ऐसा जो कहना सो व्यर्थ है क्योंकि आपही अभाव हो फिर आप कहते और सुनते हो सो कैसे बनता सो कभी नहीं बनता ऐसे २ वाद विवाद मिथ्या जो करते हैं वे नास्तिक गिने जाते हैं

(ण) यह ऊपर लिखा हुआ सम्पूर्ण लेख जैनधर्म्म से भिन्न

और स्वामी जी की मन कल्पना है, और यह बौद्ध लोगों का ही मत है, ॥

(ह) जो जैन सम्प्रदाय में अथवा किसी सम्प्रदाय में ईश्वर मतवाला पुरुष होय उसको नास्तिक ही जान लेना जैन लोगों में प्रायः इस प्रकार के वाद हैं वे सब मिथ्यावादी सज्जनों को जानना चाहिये यजमान की पत्नी अश्व के लिङ्ग को पकड़े यहबात मिथ्या है तथा संसार में राजा जो है सोई परमेश्वर है यह भी बात उनकी मिथ्या है क्योंकि मनुष्य क्या कभी परमेश्वर हो सकता है धर्म्म को बड़ा न समझना और अर्थ तथा काम कोही उत्तम समझना यह भी उनकी बात मिथ्या है इत्यादिक बहुत उनके मत में मिथ्या २ कल्पना हैं उनको सज्जन लोग कभी न माने इति ॥

(स) उपरोक्त लेख का विशेष भाग नास्तिक चार्वाक मत का है, स्वामी जी अपने अज्ञानपने से इसको यहां तो जैनियों का लिख गये किन्तु जब ठाकुरदास आदि जैनियों ने प्रमाण मांगा तब कुछ समय तक तो अनेक प्रपंच भरे उत्तर देते रहे, कभी पुस्तक हेमसार का सहारा लिया, कभी कल्पभाष्य को जा देखा, कभी यह उत्तर लिखा आप को शुद्ध भाषा लिखनाही नहीं आता, परन्तु जब कोई प्रपंच भी कार्य्यकारी न हुआ तो पश्चात् नवीन सत्यार्थ प्रकाश में यह स्वतः स्वीकार कर लिया कि यह लेख नास्तिक चार्वाक मत का है, और फिर भी अपने हठ धर्म्म को स्थिर रखने के लिये जैन बौद्ध चार्वाक तीनों को मिश्रित लिख दिया सो उसका भी यथार्थ उत्तर नवीन "सत्यार्थप्रकाश" की समीक्षा में लिखा जायगा अब यहां तक पुराने प्रथमबार के छपे "सत्यार्थप्रकाश" के द्वादश समुल्लास की समीक्षा और कुछ दयानन्द दिग्विजयार्कान्तरगत जैनधर्म्म सम्बन्धी लेख का उत्तर पूरा हुआ और आगे नवीन "सत्यार्थप्रकाश" के विषय लेख होगा, इसलिये इस "जैनसुधाबिन्दु" नाम पुस्तक का पूर्वार्द्ध भाग इसी स्थान पर पूरा होता है ॥ इत्यलम् ॥

शुद्धाशुद्ध पत्र ॥

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
भूमिका	१४	खण्डम	खण्डन
२	५	होता है तव पुद्गल	होता है तव पुद्गल
३	५	करता	करते
,,	२०	धम्म	धर्म्म
४	११	मेथुंनच	मैथुनंच
७	२	पश्र आदि	पशु आदि
८	६	निद्रामय	निद्राभय
१२	१७	दुःखदि	दुःखादि
,,	१८	जन्म	जन्म
१५	२१ व २४	स्रोत्रेन्द्रिय	श्रोत्रेन्द्रिय
१७	२८	तालब	तालाब
१८	३	असख्यात	असंख्याते
,,	,,	सुखो	सुखी
,,	१६	पुराणों	पुराणों में
१८	२१	पणों	पर्णों
२०	१८	हेते	होते
२१	१३	र्तमान	वर्तमान
,,	२४	मोंच	मोक्ष
२२	३	ह्रदय	हृदय
२३	१४	का	की
,,	२१	न्नस्ति	न्नास्ति
२५	१८	सत्र वह हे	सूत्र यह है
२७	१५	पोपों	पापों
,,	२३	लघ	लघु